दस्तकार वर्ग की 19वी सदी में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति–राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में

*नरेन्द्र कुमार
**डॉ. यूसुफ अली

सारांश

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में राजस्थान का परम्परागत सामाजिक ढांचा अपने मूल स्वरूप में विद्यमान था। सामाजिक क्षेत्र में प्रत्येक जाति की महत्ता उसकी वंशोत्पत्ति और अंगीकृत व्यवसाय पर निर्भर करती थी। केवल आर्थिक सम्पन्नता का अधिक महत्व नहीं था। विशुद्ध व्यवसायों को अपनाने वाली जातियों को सामाजिक संगठन में उच्च स्थान प्राप्त था, भले ही वे आर्थिक दृष्टि से निम्न हों। इसी प्रकार, आर्थिक रूप से सम्पन्न होने पर भी अशुद्ध व्यवसायों को अपनाने वाली जातियों को निम्न स्थान प्राप्त था। सामाजिक संगठन के अनुशासन को बनाए रखना प्रत्येक जाति से संबंधित जाति पंचायतों का कार्य था, जिन्हें अपने कर्तव्य पालन में राज्य सरकारों का संरक्षण प्राप्त था।

दस्तकार वर्ग की सामाजिक दशा

दस्तकार वर्ग में सामाजिक दृष्टि से जाति प्रथा का परम्परागत स्वरूप कायम रहा। समकालीन अभिलेखागरिय स्रोतों में उनके सामाजिक स्तर, रहन–सहन, विवाह, संस्कार, संयुक्त परिवार प्रथा आदि के बारे में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।

जोधपुर रिकोर्ड्स की कामराना (वि.सं. 1913) से ज्ञात होता है कि समाज में जाति पंचायतें अपनी जाति की उन्नति के लिए खान–पान, शादी–विवाह एवं रीति–रिवाजों के सम्बन्ध में समय–समय पर नियम बनाती थी और अपनी जाति के लोगों से जातीय नियमों एवं मर्यादाओं का पालन करवाती थी। जाति भोज के लिए पंचों से अनुमति लेना आवश्यक होता था। इस प्रकार के अवसर पर जातीय शिष्टाचार के पालन का पंच लोग बड़ा ध्यान रखते थे। सामान्य जाति भोजों में पंचायत प्रायः किसी भी प्रकार के परिवर्तन की आज्ञा नहीं देती थी। जाति पंचायतें ऐसे मामलों की सुनवाई परम्परागत रिवाज के अनुसार करती थीं। जिनसे जातीय शुद्धता पर आँच आती हो। दस्तकार वर्ग को दिया जाने वाला दण्ड अपराध की प्रकृति पर निर्भर करता था। सबसे कठोर दण्ड अपराधी व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर देना था।

जाति पंचायत औपचारिक रूप से राज्य के नियंत्रण एवं संरक्षण में होती थी। किन्तु सामान्यतः राज्य कभी अनुचित हस्तक्षेप नहीं करता था। शासक अपने पास आने वाले जातिगत मामलों को जाति पंचायतों के पास ही भिजवा देते थे। ऐसे विवादों में अधिकतर पंचायतों के निर्णय को ही मान्यता दी जाती थी। जाति पंचायत के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति राजकीय न्यायालय की शरण ले सकता था। परन्तु वहाँ भी जाति पंचों की सहायता से ही न्याय किया जाता था। इस प्रकार परम्परागत सामाजिक ढाँचे को बनाये रखने में जाति–पंचायतों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

परम्परागत जातीय व्यवसायों में परिवर्तन

राजस्थान में सामाजिक दृष्टि से परम्परागत स्वरूप कायम रहा मगर आर्थिक दृष्टि से उसमें परिवर्तन आ गया और परम्परागत जातीय व्यवसायों के अलावा प्रत्येक जाति को अन्य विविध व्यवसाय अपनाने पड़े। राजपूताना पर ब्रिटिश संरक्षण की स्थापना के बाद शासक और सामन्तों की बड़ी–बड़ी सेनाओं के विघटन, नमक व्यवसाय पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ना तथा राजकीय सेवाओं के विस्तार, भूमि बन्दोबस्त, यातायात के नए साधनों के विकास इत्यादि तत्वों के सामूहिक प्रभाव से भी जातिगत व्यवसाय के साथ–साथ अन्यपेशों को अपनाने की प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहन मिला।

पटवा, सिफलीगर, गधी, बढ़ई, लखेरा, ठठेरा, कुम्हार, लुहार, पिंजारा, कंदारा, कलाल, तेली तथ सुनार आदि

व्यवसायिक जातियों की स्थिति में यद्यपि कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया और वे उन्नीसवीं सदी में भी पहले की भाँति अपना परम्परागत व्यवसाय करती रही। किन्तु बड़े–बड़े नगर और कस्बों में कुशल मजदूरों की माँग बढ़ जाने से इन लोगों में शहरों की ओर जाने की प्रवृत्ति बढ़ी। कसाई, बलाई, चमार, रैगर आदि जातियों के व्यवसाय में भी कोई परिवर्तन नहीं आया सिवाय इसके कि उनमें से कुछ ने कृषि को अपना व्यवसाय बना लिया था।

दस्तकार वर्ग को अपनी सेवा के बदले में किसानों से निःशुल्क अनाज मिला करता था। उदाहरणार्थ ढ़ोली को गाँव में सभी उत्सवों परढ़ोल बजाना होता था और मोची को ग्रामवासियों के जूते बनाना और उनकी निःशुल्क मरम्मत करनी होती थी। चमार का मृत पशु पर अधिकार होता था और उसकी आजीविका और निर्वहन का भार सारे ग्रामीण समाज को वहन करना होता था। इसी प्रकारढोली का भी सब परिस्थितियों में समाज परदावा रहता था। उन्नीसवीं सदी में कुछ ऐसे भू–भाग भी थे जिन्हें लोग जोतते नहीं थे, अंग्रेज चूँकि उन्हें खेतों का रूप देना चाहते थे अतः उन्होंने बलाइयों को जिन्होंने खेती और अन्य कृषि जन्य कार्यों में अपने कौशल का परिचय दिया था, यह भूमि दे दी औरवहाँ उन्हें बसाकर झोपड़े भी बना दिये।

संयुक्त परिवार प्रथा

उन्नीसवीं शताब्दी में समाज में पितृ सत्तात्मक परम्परा पर आधारित संयुक्त परिवार प्रथा थी। पिता के व्यवसायों में परिवार के अन्य सदस्य भी बराबर का हाथ बंटाते थे। जैसे बढ़ाई की कास्ट कला में उसके पुत्र उसका साथ देते थे। रंगरेज परिवार में पुरुषों के साथ–साथ महिलाएँ भी रंगने के काम में मदद करती थी। बंधारा, पिंजारा आदि जातियों में भी पत्नी अपने पति के कार्य में हाथ बंटाती थी। संयुक्त परिवार प्रथा के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तकलाएँ उन्नत होती गई और निखार आता गया। परिवार के सदस्य घर पर बैठकर भी अपना कार्य कर लेते थे और बाहर काम पर भी जाते थे। उदाहरणार्थ गुड़, चूड़ी, बर्तन, जूते व लकड़ी की वस्तु बनाने वाले हस्त शिल्पी अपनी वस्तुएँ परिवार के सदस्यों के साथ घर पर भी बना लेते थे और बाहर भी बनाते थे वे राज्य के कारखानों में भी कार्य करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दस्तकार वर्ग में भी व्यक्तिवाद की भावना को प्रोत्साहन मिला। ऐसे स्वतंत्र विचारों से समाज में जहाँ शिल्पियों और कारीगरों के आत्म–सम्मान में वृद्धि हुई व स्वतंत्रता के भाव प्रस्फुटित हुये वहीं परिवार की संयुक्त सम्पत्ति एवं बंटवारे को लेकर समाज में पारिवारिक झगड़े और विवादों में वृद्धि होने के भी कई साक्ष्य समकालीन अभिलेखागारीय स्रोतों में प्राप्त होते हैं।

बढ़ते उद्योग–धन्धों, नवीन औद्योगिक व्यावसायिक संरचना, शहरीकरण, यातायात के साधनों के विकास के परिवर्तनशील दौर में संयुक्त परिवार के स्थान पर अब विभाजित कुटुम्ब और व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना का विकास हुआ जिससे संयुक्त परिवार के विघटन को बढ़ावा मिला।

संस्कार

उन्नीसवीं शताब्दी में दस्तकार वर्ग में जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों का महत्त्व बना रहा। इनमें से कुछ संस्कार यथा विवाह एवं मृत्यु संस्कार जीवन के अभिन्न अंग समझे जाते थे क्योंकि वे प्राचीनतम धार्मिक व्यवस्था पर आधारित थे। कुछ अन्यसंस्कार जैसे नामकरण अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्ण भेद इत्यादि भी समाज के अभिन्न अंग थे। विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के कारण संस्कारों का स्वरूप बदल चुका था तथा उनका महत्त्व भी कम हो गया था।[13] समस्त जनता सभी संस्कारों को विधिपूर्वक नहीं निभा पाती थी क्योंकि इनके लिए आवश्यक धन व्यय करना उनके लिए संभव नहीं था।

विवाह

भारतीय समाज में विवाह एक धार्मिक और सामाजिक दायित्व माना जाता था। विवाह की आयु सीमा निश्चित नहीं थी विवाह से पूर्व सगाई की रस्म अदा की जाती थी।[15] इस अवसर पर लड़की का पिता लड़के को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार कपड़े, आभूषण, मेवा, मिठाई व नारियल भेजता था। विवाह का दिन निश्चित हो जाने से लेकर बारात की विदाई तक अलग–अलग जातियों में विविध रीति–रिवाजों का पालन किया जाता था। परिवार की प्रतिष्ठा की दृष्टि से विवाह के अवसर पर 'बरी पड़ला' और दहेज का विशेष महत्त्व था। वह पक्ष की ओर से वधू के लिए

जो आभूषण और वस्त्र लाए जाते थे उसे 'बरी' कहते थे।[17] इनके साथ भेजे जाने वाले मेवा–मिठाई व सुगन्धित वस्तुओं को 'पंडला' कहते थे। वधू पक्ष की ओर से दिया जाने वाला समान 'दहेज' कहलाता था। 'बरी पड़ले में चूड़ा और चूनड़ी का होना जरूरी होता था क्योंकि इन दोनों को सुहाग का प्रतीक माना जाता था।

दस्तकार जातियों में कुछ रस्में एक–दूसरे से पृथक् होती थी जैसे बर्तन बनाने वाले ठठेरा व कंसारा जाति के लोग विनायक के दिन दूल्हे को जनेऊ पहनाते थे जबकि भाटी गोत्र वाले कंसारा आई जी का डोरा बांधते थे। पिंजारा जाति में एक अनोखी रस्म थी कि जिस गाँव में बारात जाती थी, विवाह के बाद बाराती कुछ सूबे कांटे लेकर उस गाँव के जागीरदार के यहाँ जाते और शराब पीकर एक व्यक्ति द्वारा उनको जलाया जाता था। फिर वह उस पर लोटता, जिस पर जागीरदार द्वारा ईनाम दिया जाता था।बंधारा जाति में विवाह आटे–साटे प्रथा से करने का रिवाज था। यदि आटा–साटा ना होता तो सगाई के अवसर पर वर पक्ष द्वारा वधू के माता–पिता को रूपये देने का प्रचलन था। बांस की टोकरियाँ बनाने वाले गांछा दस्तकारों में विवाह में तोरण फेरों से एक दिन पहले वर जाकर बाँधता था और विवाह में गांछो के यहाँ केवल चार फेरे लिये जाते थे। कीर विवाह में केवल अपना गोत्र टालते थे।

शराब के व्यवसाय से जुड़ी कलाल जाति में दुल्हा तोरण मारकर अपने घर चला जाता था और नहाकर कोरपान धोती पहनता और फिर दुल्हन के घर आकर खड़ा हो जाता था। रैगर विवाह में माँ, बाप, दादी और नानी का गोत्र टालते थे। खटीकों में सगाई के समय पंचों को शराब पिलाने से सगाई पक्की हो जाती थी। ग्वारियाँ जाति में विवाह में मूसल रोपकर वर–वधू को फेरे दिलवाते थे। मूसल तीनदिन तक गड़ा रहता था।

उन्नीसवीं शताब्दी में पेशेवर दस्तकार जातियों में भी विवाह में 'कन्या मूल्य' अथवा कन्या के बदले 'रुपया' लेने की प्रथा शुरू हो गई थी। कहीं–कहीं पर सगाई तय कर देने के बाद भी अधिक धन मिलने का सुयोग होने पर लोग सगाई सम्बन्ध तोड़कर विवाह दूसरी जगह कर लेते थे। उदाहरण के लिए 1890–1900 की अवधि में जोधपुर की दीवानी अदालतों में सगाई सम्बन्ध तोड़ने के 209 मामले प्रस्तुत हुए।

नाता प्रथा (विधवा विवाह)

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मण, उच्च राजपूत, चूड़ीगर व साँसी जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था। अन्य जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन था जिसे 'नाता' कहते थे। दस्तकार जातियों में विधवा–विवाह से पूर्व विधवा के मृतक पति के घरवालों से फारगती (हिसाब–चुकताना) करवाना आवश्यक होता था। मालियों में फारगरती के लिए 50 रुपये व भाटों में 40 रुपये देने की रीति–रिवाज थी।[23] ऐसा नहीं करने पर पंचायतें और राज्य के राजा ने फारगती नहीं की तो सरकार ने उस पर 10 रूपये जुर्माना किया। अधिकांश दस्तकार जातियों व निम्न जातियों में पति के जीवित रहते हुए भी धन के लालच में विवाहित लड़की को किसी अन्य व्यक्ति के नाते भेज दिया जाता था। नाते से उत्पन्न संतान पूर्णतः वैध समझी जाती थी। बूँदी नरेश रामसिंह ने इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाये थे।

19वीं सदी में बूँदी नरेश रामसिंह जी को अंग्रेज अधिकारियों के साथ निरन्तर समपर्क में रहने से आधुनिक परिवेश का ज्ञान हुआ।[25] जिसकी तुलना में उन्हें राज्य में प्रचलित अनेक रूढ़ियाँ सामाजिक उत्थान के मार्ग में अवरोधक दृष्टिगोचर होने लगी। रमासिंह के बाद महाराजा रघुवीर सिंह जी व ईश्वरी सिंह जी भी सामाजिक कलयाण की भावना से ओत–प्रोत थे।

दहेज प्रथा

विवाह में दहेज प्रथा का भी प्रचलन था बूँदी के महाराजा रामसिंह से प्रायः निर्धन दस्तकार अपनी कन्या के दहेज हेतु धन की याचना करते थे उन्होंने ऐसे अनेक याचकों को सहायता तो दी मगर वे हमेशा दहेज प्रथा का अन्त करने की कोशिश करते थे। उन्होंने अपने सरदारों को कम दहेज स्वीकारने के आदेश दिये।

मृतक संस्कार

समाज में मृतक संस्कार का भी अपना विशिष्ट महत्त्व रहा है। यद्यपि पृथक्–पृथक् दस्तकार जातियों ने अलग–अलग रिवाजों की परम्परा पड़ गई थी तथा बुनियादी बातों में एकरूपता कायम रही। हिन्दू दस्तकार वर्ग में बड़े–बूढ़े की मृत्यु हो जाने पर उसके निकटतम रिश्तेदारों को दाढ़ी और मूछ मूँडवा कर 'भदर' होना आवश्यक होता

था। शासक की मृत्यु पर मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि जातियों को छोड़कर शेष नागरिकों को भदर होना पड़ता था। इस सम्बन्ध में बाकायदा राजकीय आदेश भी प्रसारित किये जाते थे।

राजस्थान के हिन्दू समाज की सभी जातियों कृषक एवं दस्तकार आदि में प्रौढ़ और वृद्धों की मृत्यु पर मृत्यु भोज का आयोजन महारोग के समान व्याप्त था।[29] निर्धन वर्ग को कर्ज लेकर भी मृत्यु भेज करना पड़ता था और वे जीवन पर ऋण नहीं चुका पाते थे।

दस्तकार वर्ग का रहन–सहन व नारी की स्थिति

काश्तकार जातियों के लिए दस्तारों का बड़ा महत्त्व था क्योंकि किसी भी कृषि कार्य के शलिए आवश्यक अनेक वस्तुएँ दस्तकार द्वारा निर्मित की जाती थी। उदाहरण के लिए लकड़ी का हल बढ़ई, लोहे का फाल लुहार और चमड़े की चड़स रैगर बनाते थे। किसानों पर तो यद्यपि लाग बागों का अधिक दबाव था मगर अपेक्षाकृत दस्तकारों का जीवन स्तर उनसे अच्छा था। उन्हें ग्रामवासी काम के बदले इन्हें अनाज देते थे। दस्तकार वर्ग भी स्त्रियों में अधिकांशतः चाँदी के कड़े, बाजूबन्द, लाख एवं काँच की चूड़ियाँ गले में तिमणियां आदि गहने पहनने का रिवाज था। गंवारिया जाति की महिलाएँ संजाब घाघरे व झब्बादार कांचली पहनती थी जिससे पेट छिपा रहता था। खातियों की औरतें नाक नहीं छिदवाती थी। घांची जाति की स्त्रियाँ बिना कली वाला घाघरा पहनती थी। तेली जाति की महिलाएँ लाख व पीतल के चूड़े पहनती थी। दर्जी जाति के पुरुष अपनी पगड़ी में सुई अवश्य रखते थे।[30] अधिकांश दस्तकार पुरुष कुर्त्ता, धोती व साफा पहनते थे और महिलाएँ नेफादार घाघरा पहनती थी।मनोरंजन के साधन परम्परागत ही थे। मेले और त्यौहारों दस्तकार वर्ग के सामाजिक जीवन और उत्सवरों का मुख्य अंग थे। वो भारतीय रीति–रिवाजों से जुड़े हुए थे और प्रत्येक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नयी मशीनों पर आधारित नये कारखानों की शुरूआत से राज्य में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई। राज्य में स्थित शान्ति व्यवस्था ने विकास को गति प्रदान की। पहले जहाँ दस्तकारों के मकान मिट्टी, गारे और छप्पर के होते थे अब उनमें परिवर्तन की बयार आने लगी। मिट्टी के कच्चे घरों का स्थान प्लास्टर किये हुये पक्के घरों (पत्थर के) ने ले लिया। रसोई में मिट्टी के बर्तनों का स्थान धातु के बर्तनों ने ले लिया था। कुर्सी व मेज का प्रयोग भी शाही घरों व दफ्तरों में बढ़ गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में राजस्थान के विभिन्न भागों में पश्चिमी शिक्षा का प्रसार प्रारम्भ हुआ मगर दस्तकार वर्ग अभी भी शिक्षा की दृष्टि से अधिक आगे नहीं आ पाया था। बूँदी के महाराजा रामसिंह निःसहाय बालिकाओं को विद्या अध्ययन व आजीविका के लिए धन देते थे। धर्म में गहरी आस्था के साथ ही दस्तकारों में विभिन्न अंधविश्वासों का भी अस्तित्व था। राज्य में अनेकों पुराने स्थानों में किसी प्रेतात्मा के निवास की धारणाएँ प्रचलित थी अतः लोग सामान्यतः खण्डहर, पुराने मकान, बावड़ियाँ, पीपल के पेड़ आदि स्थलों पर जाने का साहस नहीं कर पाते थे। जादू–टोना व झाड़–फूँक का भी समाज में प्रचलन था। बूँदी के महाराव रामसिंह जी ने अपने राज्य में मुल्की विभाग में एक जनसम्पर्क अधिकारी की नियुक्ति की जो अहलकार कहलाता था। यह जनता के हितों व कष्टों का भी ध्यान रखता था।

जीवन के हर क्षेत्र में औरत पर कठोर सामाजिक मर्यादाओं का पहरा था पर्दा उसके लिए अभिशाप था। पिता, पुत्र व पति के अधीन उसका जीवन बितता था। ब्रिटिश दबाव में सती–प्रथा व कन्या वध जैसी कुप्रथाओं पर शासकों ने रोक लगा दी थी जो स्त्रियों के लिए हक मील का पत्थर साबित हुआ। पुलिस अपराधों की छान–बीन करती थी और उनका वार्षिक ब्यौरा भी रखती थी। थानेदारों व कोतवालों का यह भी दायित्व था कि वे नगरों एवं कस्बों की स्वच्छता की नित्य व्यवस्था करें। रात को व्यक्ति दीपक या लालटेन साथ लेकर ही बाहर जा सकता था। जहाँ भी परकोटे एवं मार्गों में द्वार थे, वहाँ शस्त्रधारी मनुष्यों को नियुक्त किया जाता था। गाँव में पंचायतें न्याय करती थी और जाति सम्बन्धी मुकदमों की सुनवाई सम्बन्धित जाति के पंच ही कर देते थे।

दस्तकार वर्ग की आर्थिक दशा

समकालीन अभिलेखागारिय स्रोतों से ज्ञात होता है कि दस्तकार वर्ग की आर्थिक दशा संतोषजनक स्थिति से काफी दूर थी। जोधपुर, बीकानेर व कोटा रिकॉर्ड्स बताते हैं कि जो मजदूर मजदूरी प्राप्त करते थे वो 2 रुपये से 4 रुपये के बीच होती थी जो काफी कम थी। राज्य कारखानों में संलग्न दस्तकारों को भी काफी शिकायतें थी। उदाहरणार्थ सनद परवान बही नं. 21 में उल्लेख आता है कि एक तेली और तेल निकालने वाला शिकायत करता है कि उसने

गुलाब व चमेली का तेल निकालने ने काफी श्रम व समय लगाया, मगर वह काफी कम तनख्वाह पाता था और वह भी उसे समय पर प्राप्त नहीं होती थी।[38] अदक्ष श्रमिकों की दशा तो काफी बुरी थी। कोटा के राजमहल में कार्य में संलग्न मजदूरों को केवल 4 छटांक ज्वार प्रतिदिन दी जाती थी।

ग्रामीण दस्तकार वर्ग की तुलना में शहरी दस्तकार वर्ग अपेक्षाकृत अधिक लाभ की स्थिति में था। ग्रामीण दस्तकार उन्नीसवीं शताब्दी में भी जमींदार, जागीरदार व साहूकारों के दबाव में जीता था। उन्हें सामान्यतः वस्तु रूप में ही भुगतान किया जाता था। लुहार, खाती, तेली, दर्जी, ठठेरा, मोची आदि जो किसानों व अन्य वर्ग के लिए चीजें बनाने के काम करते थे, उन्हें फसल कटने के समय ही उपभोग के लिए एक निश्चित मात्रा में अनाज दे दिया जाता था।

ग्रामीण दस्तकार वर्ग का जागीरदारों द्वारा शोषण किया जाना आम बात थी जैसा कि सनद परवाना बही सं.9 में उल्लेख है कि परबतसर में तेली वर्ग ने गाँव के जागीरदार के अत्याचारों से परेशान होकर गाँव छोड़ दिया था और फिर जब राज्य सरकार ने उनके लौटने की उचित व्यवस्था की और करों में छूट देने का वादा किया था तभी वे वापस लौटे थे।

दस्तकार वर्ग द्वारा चुकाये जाने वाले कर

उन्नीसवीं शताब्दी में तेली, कुम्हार, सुथार, लुहार, दर्जी, चमार, रंगरेज, पिंजारा आदि शिल्पकारों व दस्तकारों से राज्य द्वारा विभिन्न कर वसूले जाते थे। तेली के कोल्हू पर नेगघाणी, तेलपाली, धाणी पाली, किराया घाणी आदि कर लगाये जाते थे। खंदी रैगरों एवं चमारों से लिया जाने वाला कर था। यह कर प्रति दुकान दो रुपये सात आने तक वार्षिक होता था।

चमारों से जूते बनवाई की एवज में पगरखी नामक कर वसूला जाता था। साग–सब्जी बेचने वाले मालियों के घर से प्रति घर चार आना हौद भराई ली जाती थी। सवा रुपये प्रति घर हलवाइयों से दावत–पूजन का वसूला जाता था।

मिट्टी के बर्तन और खिलौनी बनाने में अपने हाथ का हुनर दिखाने वाले कुम्हारों को 'आव' नामक कर देना पड़ता था। रेजा रंगाई और कोठा नील नामक कर रंगरेजों द्वारा भुगतान किया जाता था। 'अड़ा या दस्तूर रेगर' चमड़ा कमाने पर रैगर नामक जाति से वसूला जाता था। 'लगान औसरा' दुकान कर (बंदनवाड़ा में प्रयुक्त) था। बुनकर से प्रति घर लगान रेजा वसूला जाता था जो उन्नीसवीं शताब्दी में अजमेर के देवलिया कलाँ में 5 रुपये प्रति घर के हिसाब से वसूला जाता था जो सर्वाधिक था। धुनको से 'पीनन खरीफ' कर वसूला जाता था 'भट्टे का चूना' नामक कर में प्रत्येक भट्टे से गिनती की चूने की टोकरियाँ ली जाती थी। चूने निकालने की भट्टी का लाइसेंस कर किराया भट्टी कहलाता था।

अजमेर के मनोहरपुर में मालियों एवं तेलियों पर एक विशेष कर कुओं पर लिया जाता था जो 'बावरा' कहलाता था। 'कुर' भी कुँओं पर लगने वाला ऐसा कर था जो प्राचीनकाल से चला आ रहा था तथा जो लकड़ी के प्रयोग करने पर स्थापित किया जाता था।

दस्तकार वर्ग पर लगने वाले उपर्युक्त करों के कारण उनकी जीवन दशा काफी हद तक प्रभावित हुई। दस्तकार वर्ग का आर्थिक जीवन दयनीयता की ओर अग्रसर होता गया।

दस्तकार वर्ग की ऋणग्रस्तता

एक साधारण दस्तकार के पास अपनी वस्तुएँ तैयार करने के लिए आवश्यक कच्चामाल खरीदने के लिए पर्याप्त पूँजी की कमी रहती थी। उन्हें ऋण दाताओं पर निर्भर रहना पड़ता था। महाजन व साहूकार निर्धन दस्तकारों को जब धन व अन्न के रूप में ऋण देते थे तब उस पर वे उनसे मनमाना ब्याज वसूल लेते थे। कभी–कभी मूल धन अथवा मूल अन्न की मात्रा से कई गुना अधिक ब्याज चढ़ जाता था। इस कष्ट से जनता को राहत देने हेतु कोटा के महाराजा रामसिंह जी ने यह नियम बनाया था कि यदि ब्याज इतना अधिक हो जाये कि उसकी मात्रा मूलधन के समान हो जाये तथा अनाज पर ब्याज बढ़ते–बढ़ते मूल अन्न से दुगुना हो जाये, तब इससे अधिक ब्याज में वृद्धि नहीं की जा सकती थी।

कभी–कभी दस्तकार वर्ग का ऋणदाताओं से एक समझौता हो जाता था जिसके अन्तर्गत उन्हें अपना तैयार माल ऋणदाताओं को ही बेचना होता था और ऐसी हालत में ऋणदाता दस्तकारों को उनकी वस्तुएँ से बहुत कम मूल्य

चुकाते थे। मध्यस्थ वर्ग भी दस्तकार वर्ग का शोषण करते थे। वे उनकी गरीबी से लाभ उठाने के लिए काफी मात्रा में वस्तुएँ एक साथ कम कीमत पर खरीद लेते थे।

दस्तकार वर्ग में बेरोजगारी भी आम थी। राज्य के कारखानों में काम करने वाले दस्तकारों की संख्या बहुत कम होती थी। जो दस्तकार वर्ग सामान्य वस्तुएँ बनाते थे उन्हें सीमित बाजार मिलता था। जबकि दक्षता प्राप्त कारीगरों की तो राज्य के बाहर भी माँग थी। बेरोजगारी किसी ना किसी रूप में विद्यमान थी। सनद परवाना बही सं.20 में एक गाँव वीरामी के ठठेरा कालूराम ने जोधपुर महाराजा को बेरोजगारी की शियाकायत की थी। उसने यह प्रार्थना भी कि उसकी उपलब्धता और कार्य में दक्षता के बाद भी राज्य के दूसरे हिस्सों में बर्तन बनाने वालों को बुलाया गया था।[44] समकालीन साक्ष्यों में ऐसे संदर्भ भी मिलते हैं जहाँ परिस्थिति व माँग के आधार पर रोजगार को बढ़ावा दिया गया। विवाह, जाति भोज, मृत्यु भोज पर इस वर्ग द्वारा काफी धन खर्च कर दिया जाता था। जोधपुर दरबार ने खाती रहमान को उसकी बेटी के विवाह में धन की आवश्यकता की पूर्ति किये जाने का आश्वासन दिया था।[45] विशेषज्ञता प्राप्त दस्तकारों को प्राथमिकता दी जाती थी।

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी में दस्तकार वर्ग अपनी कम आय, सामाजिक–धार्मिक अवसरों पर किये जाने वाले खर्च, कच्चे माल की अर्प्याप्त आपूर्ति व संगठित विपणन संस्थाओं की कमी के कारण ऋणदाताओं के चंगुल में फँस जाते थे।

दस्तकार वर्ग को प्राप्त होने वाली आय

राजस्थान राजय अभिलेखागार, बीकानेर में मौजूद अभिलेखागारीय रिकॉर्ड्स जैसे बड़े कमठाना बही, लेखा बही व जमा खर्च बही से हमें दस्तकारों की आय, सामान्य दशा व प्राप्त कीमतों के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर में भी जालौर परगने की संरक्षित कोतवाली चबूतरा जमाबंदी बही सं. 753 व 754 में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

बीकानेर रिकॉर्ड्स की बड़े कमठाना बहियों में कारीगरों को नकदी में दी जाने वाली दैनिक व मासिक मजदूरी का उल्लेख मिलता है। इन बहियों में विभिन्न तारीखों को कारीगरों को दी गई मजदूरी का उल्लेख है। लेकिन इनमें मजदूरी वितरण का नियमित रूप से श्रृंखलाबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं है बल्कि इनको काफी समय अन्तराल पाया गया है। अतः विभिन्न कड़ियों को जोड़ते हुये बिल्कुल सही मजदूरी का विवरण निकालना काफी मुश्किल है। अतः उपलब्ध तथ्यों के आधार पर एक सैम्पल सर्वेक्षण के आधार मानकर उन्नीसवीं सदी में दस्तारों को दी जाने वाली मजदूरी को निकाला गया है। वर्तमान में दस्तकार वर्ग की मजदूरी से उन्नीसवीं सदी के मजदूरों के वेतना की तुलना करने के लिए उस काल के रिकॉर्ड्स में मुद्रा का रूपान्तरण रुपये और आना में कर दिया गया है। कार्य की प्रकृति व विविधता के आधार पर कीमतों में विविधता पाई जाती थी।

कार्य प्रकृति के आधार पर दस्तकार वर्ग की मजदूरी

स्थान	साल	दस्तकार वर्ग	कार्य की पद्धति	मजदूरी
जोधपुर	वि.सं. 1833	लुहार	लोहे की	1 रुपये, 4 आना
कोटा	वि.सं. 1874	लुहार	गाड़ी व हल में लोहे की पाती लगाना	3 रुपये, 8 आना
कोटा	वि.सं. 1874	खाती	गाड़ी और हल बनाना	4 रुपये, 15 आना
जयपुर	वि.सं. 1823	छीपा	कुर्ते व महिला पोशाकों का काम	2 रुपये, 4 आना
जोधपुर	वि.सं. 1828	चूड़ीदार	कंगन बनाना	4 रुपये, 4 आना
जालौर	वि.सं. 1833	खाती	मोती महल के लकड़ी का कार्य	2.5 आना प्रतिदिन

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि दस्तकार वर्ग को अपने कार्य के लिए प्राप्त होने वाली मजदूरी बहुत अधिक नहीं थी। इस प्रकार का कम वेतन केवल कम कीमत वाली घरेलू वस्तुएँ खरीदने में ही मदद कर सकता था। समकालीन अभिलेखागारीय स्रोतों में प्राप्त कृषिगत वस्तुओं की कीमत व विभिन्न अवसरों पर कामठाना वही में तेल

व गुड़ की कीमतों के आधार पर हम मजदूर वर्ग की क्रय शक्ति को अनुमान लगा सकते हैं।

दस्तकार वर्ग के लिए आवश्यक घरेलू आवश्यकता की वस्तुओं की सूची प्रस्तुत है।

भौजय पदार्थ	रुपये
बाजरा प्रति मण	1 रुपये 2 आना
मोठ प्रति मण	1 रुपये
गुड़ प्रति मण	0 रुपये 4 आना
तेल प्रति मण	0 रुपये 3–4 आना
कपड़े के 10 थान	2–3 रुपये

उपर्युक्त तालिका एवं दस्तकारों की मजदूरी वाली तालिका दोनों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि एक दैनिक श्रमिक के लिए दैनिक उपयोग की वस्तुएँ और पोषणकारी भोजन प्राप्त करना काफी मुश्किल था। अपने परिवार के लिए आवश्यक वस्तुएँ, उपयुक्त भोजन व अन्य जरूरतें पूरी करने के लिए उसकी आय पर्याप्त नहीं थी। इन मजदूरों को वस्तु रुप में पूरक भुगतान भी किया जाता था जो उन्हें थोड़ी राहत देता था उसके बिना नकदी भुगतान से उनकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती थी।

कारीगरों और मजदूर वर्ग की विभिन्न जगहों की मजदूरी में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता था, वह न्यूनाधिक रूप से लगीाग समान ही थी। उदाहरणार्थ खाटू के कुशल दशतकारों को रानीसर झील के निर्माण के लिए 4 आना प्रतिदिन दिये जाते थ और 30 कुशल मजदूर और 20 बेलदार मजदूर दरबार द्वारा काम पर रखे गये थे। उन्हें 2 आना प्रतिदिन दिया गया था। मारवाड़ की ओर से सिलावट करीम ने जालौर में सरकारी बगीचे में एक कमरे के निर्माण की मजदूरी 25 फदिया लिये थे। जालौर के सूरजपोल में भी सिलावट कमल ने 6 फदिया 6 दिन में मरम्मत कार्य हेतु प्राप्त किये थे।

इस काल में एक साधारण मजदूर को 2 आना से 1 आना प्रतिदिन मजदूरी मिलती थी जो कि बीकानेर के मजदूरों को प्राप्त होती थी। कोटा के महल में कार्यरत कारीगरों को वि.सं. 1869 में 4 छटांग (200 ग्राम) ज्वार प्रतिदिन मजदूरी के रूप में दी जाती थी। समकालीन अभिलेखागारिय स्रोतों में इस प्रकार वस्तु रूप में दी जाने वाली मजदूरी को 'पेटिया' कहा गया है।

अकाल और दस्तकार वर्ग

अकाल और राजस्थान का हमेशा से चोली–दामन का साथ रहा है। विशेषतः पश्चिम क्षेत्र जिसे 'मरु भूमि' कहा गया है, प्राचीन काल से ही अकाल का केन्द्र रहा है। शब्दार्थ की दृष्टि से मरुभूमि का अर्थ 'मृत्यु भूमि' है।[62] वर्षा का अभाव असमय वर्षा, अल्पवृष्टि अथवा पाला पड़ना, टिड्डियों का आगमन आदि अकाल के सामान्य कारण रहे हैं।[63]

उन्नीसवीं शताब्दी में राजस्थान की जनता को 1816, 1824, 1833, 1848, 1868, 1890–92, 1899–1900 में अकाल की मार झेलनी पड़ी। इन अकाल के वर्षों ने लोगों को भूखमरी की स्थिति पैदा कर दी जिससे लोगों का आत्मसम्मान व आत्मविश्वास कमजोर हो गया।[64] अकाल के कारण जनता राहत के लिए कराहने लगी। दस्तकार वर्ग को भी किसानों से मिलने वाला पेटिया बंद हो गया जबकि उन्हें तेलघाणी, रेजा रंगाई आदि कर पहले की भाँति चुकाने पड़ते थे अतः उन पर दोहरी मार पड़ी परिणामतः वे अपनी दुकानें व घर छोड़कर अन्यत्र जाने लगे।

सन् 1868–69 के अकाल वर्षों में अजमेर जिले को छोड़कर जाने वालों की संख्या 23345 थी। अजमेर से 14152 तथा झोटवाड़ा से 6613 व्यक्ति बाहर गये थे। अक्टूबर 1868 से बाहर जाने का क्रम जारी हुआ और 1869 तक जारी रहा। बाहर जाने वाले व्यक्तियों में से 10950 वापस लौट आये थे। निम्न तालिका में 1890–92 के अकाल के समय बाहर जाने वाले मृतकों एवं पुनः न लौटने वालों के आंकड़े प्रस्तुत हैं।[65]

जिला	निष्क्रमणता	वापसी	मृतक अथवा बाहर रह गए
अजमेर	32219	23763	8456
मेरवाड़ा	6209	4554	1653
	38428	**28317**	**10111**

जे.डी. लाटूश के अनुसार अकाल के वर्षों में जिले से लोगों के निष्क्रमण की गति दिनों दिन बढ़ रही थी। लोगों की स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि भूख के कारण वे खेजड़े की छाल को पीसकर आटे में मिलाकर रोटियाँ बनाकर खाने को मजबूर हो गए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में अजमेर में औद्योगिक जनसंख्या केवल 17.76 प्रतिशत थी जो मुख्यतया कपास एवं चमड़े के उद्योग व रेलवे वर्कशॉप में लगी हुई थी। खेतिहर मजदूरों के अतिरिक्त सामान्य श्रमिक की जनसंख्या 10.56 प्रतिशत थी। अतः स्वाभाविक था कि अकाल के वर्षों ने अधिकांश जनता पर क्रूर प्रहार किया और यहाँ के उद्योग–धन्धों पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ा।

राजस्थान के शासकों को समय–समय पर अकाल के समय जनता को राहत पहुँचाने के लिए हर सम्भव प्रयास किये। 1833 में बूँदी में अनावृष्टि के कारण भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। महाराजा रामसिंह ने इस वर्ष लगान वसूली स्थगित कर दी थी। इससे बढ़ई, कुम्हार, लुहार, तेली, गंधी, पटवा, कारीगर आदि सभी दस्तकार वर्गों को अकाल की पीड़ा से थोड़ी राहत मिली। ऐसी ही छूट 1852 ई. व 1868–69 ई. के अकालों के समय में भी दी गई थी। समय–समय पर दस्तकारों को नकदी ऋण भी मिल जाते थे। 1899 ई. के अकाल के दौरान महाराव राजा रघुवीर सिंह जी ने ब्रिटिश सरकार से 2 लाख रुपये कर्ज लेकर तकाबियां बाँटी।1899–1990 ई. के मध्य राज्य में भीषण अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसके साथ ही संक्रामक रोग भी फैल गये जिसके कारण सैंकड़ों व्यक्ति मर गये।

पर्दा नशीन महिलाओं, विधवाओं एवं बच्चों को जो उच्च जाति अथवा वंश की परम्परा के कारण खुले में मजदूरी करने में असमर्थ थे उन्हें घरेलू कार्य भी दिए गए थे। क्योंकि उनके भरण–पोषण का कोई सहारा नहीं था। सन् 1859–70 के अकाल के वर्षों में अजमेर में राहत कार्यों में औसतन 9742 व्यक्तियों को सार्वजनिक निर्माण विभाग के अन्तर्गत दैनिक मजदूरी मिलती थी। सन् 1890–91 के अकाल वर्षों में दैनिक मजदूरी करने वाले लोगों की संख्या 11682 थी तथा राहत कार्यों पर 1254116 रुपये सरकार द्वारा व्यय किए गए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक जनता पर ब्रिटिश प्रभाव के कारण अधिक भार और करों में बढ़ोतरी हो गई थी। लाखों लोग जीवन यापन की तलाश में बेघर हो गए थे। जब कोई व्यक्ति काम धन्धे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का निर्णय भी करता तो प्रत्येक व्यक्ति से सड़कों पर गुजरने के कर के रुप में एक आना व बैलगाड़ी के लिए चार आने से लेकर आठ आने तक कर वसूल किया जाता था। केवल वे ही लोग यात्रा कर पाते थे जो कर चुका सकते थे।

***इतिहास विभाग,**
सरिता कॉलेज बॉडी, धौलपुर (राज.)
****असिस्टेंट प्रोफेसर**
एमजेआरपी यूनिवर्सिटी, जयपुर

संदर्भ सूची

1. हथ बही, सम्वत् 1948 (1891 ई.), पृ.3, जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
2. फुटकर बही कबूलियत, समवत् 1904–1905 जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

3. (क) फुटकर बही, राजीनामा, समवत्, 1913 (1856 ई.)
   (ख) मारवाड़ मर्दुमशुमारी रिपोर्ट 1891, पृ.32.
4. जोधपुर री ख्यात, पृ.103.
5. सनद परवाना बही, सम्वत् 1858 (1801 ई.), पृ.39, जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
6. चित्रसेन कोठी तालिका बही, वि.सं. 1911 (1854 ई.), पृ.3, जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
7. (क) सनद परवाना बही वि.सं. 1858, पृ.52, जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
   (ख) भण्डार नं.3, वि.सं. 1881 (1824 ई.), राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
8. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजपूत स्टेडीज, पृ.175.
9. भण्डार नं. 26, बस्ता नं. 61, वि.सं. 1962 (1845 ई.), कोटा रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
10. रेजीडेन्सी फाईल नं. 14(अ) जोधपुर रिकोर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।